६८१ लि६६
२१० कृपा
२११ वाचस्पति

पुस्तकालय

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वर्ग संख्या $\frac{६६१}{१०२}$ आगत संख्या ३३,०३०

पुस्तक विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित 30 वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापस आ जानी चाहिए अन्यथा 50 पैसे प्रति दिन के हिसाब से विलम्ब दण्ड लगेगा।

Kangri. Haridwar

१९ आक्टूबर ७२ से प्रारम्भ

Gurukul Kangri University

की

B.I.M.S

आयुर्वेदाचार्य

विद्यालंकार

वेदालंकार

सिद्धान्तालंकार

विद्याभास्कर

वेदवाचस्पति

विद्यावाचस्पति

भवतुवेद विदां परिवर्द्धनम्, अयंतुमूढधियां परिनर्द्धनम्।

ओ३म्

श्री० अन्नंभट्ट प्रणीतः—

तर्कसंग्रहः ।

मुरादाबाद नगरस्थ—बलदेवार्य्य संस्कृत
पाठशालायाः प्रथमाऽध्यापकेन
जीवारामेण शर्म्मणा विरचितया
व्याख्यया समलङ्कृतःतेनैव
संस्कृतः प्रकाशितश्च

मुरादाबाद नगरे
"भुवनेश्वरी" मुद्रणयन्त्रे
मुद्रापयित्वा प्रकाशितः

प्रथमावृत्तौ १०००] सन् १९०७[प्र०पु०मू० ।)

जयतुवेदमतो भुविभा... मेश्वर! ॥

विज्ञापन ।

काशीस्थप्रथमा परीक्षार्थ

रघुवंश ।

द्वितीय सर्ग से लेकर पञ्चम सर्ग तक सान्वय पर्याय वाचक शब्दों के सहित मय विशेष शब्द सिद्धि के सुन्दर कागज़ पर मुद्रित समुपस्थित है मूल्य ।=)

रामायण महाभारत ।

(परीक्षा संकलितांश)

सान्वय पर्याय वाचक शब्द युक्त मय विशेष शब्द सिद्धि के मू० ≡)

संस्कृत शिक्षा ।

संस्कृत में शीघ्र बोध करानेवाले इसके तीन चार भाग हैं जिनकी प्रशंसा श्रीवेङ्कटेश्वर भारतमित्र एवं बंगवासी प्रभृति महत् समाचार पत्रों ने की है—हम केवल इतना ही कहसकते हैं कि संस्कृत बोलने एवं अनुवाद में अतीव सहायता मिलती है मूल्य प्र० पु० –) द्वि० पु० –)॥ तृ० पु० ≡) च० पु० ।=)

किरातार्जुनीय सटीकम् ।

[आद्यं सर्गत्रयम्]

सान्वय पर्याय वाचक शब्द युक्त मय विशेष व्युत्पत्ति एवं सिद्धि के मू० ।-)

पुस्तक मिलने का पता—

श्री० प० जीवाराम शर्म्मा—मुख्याध्यापक

व० आ० संस्कृतपाठशाला मुरादाबाद.

॥ ओ३म् ॥

तर्क संग्रहः ।

(भाषा टीका सहितः)

निधाय हृदि विश्वेशं विधाय गुरुवन्दनम् ।
बालानां सुख बोधाय क्रियते तर्क संग्रहः ॥१॥

मनमें परमात्माको रखकर [ध्यानकर] एवं गुरूकी वन्दना [आदाब] करके बालकों के सहजबोधार्थ तर्कसंग्रह नामक ग्रन्थ रचा जाता है ।

पदार्थ विभागमाह ।

द्रव्य गुण कर्म सामान्य विशेष समवाया-ऽभावाः सप्तपदार्थाः ॥ १ ॥

संसार में द्रव्य गुण कर्म सामान्य विशेष समवाय और अभाव यह सात पदार्थ हैं ॥ १ ॥

द्रव्य विभागमाह ।

तत्र द्रव्याणि पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाश कालदिगात्ममनांसि नवैव ॥ २ ॥

तत्र—(१) पदार्थों में—पृथिवी (कठोर पदार्थ) जल (बांधनेवाला वस्तु) तेज (प्रकाशक वस्तु) वायु (संसारस्थ

वस्तुओं को चलानेवाला पदार्थ) आकाश (पोल जिसमें इतर द्रव्य रहते हैं) काल (जिस में अपर, पर, एकवार, बिलम्ब. शीघ्रादि प्रयोगहों) दिशा (यहां से यह पूर्व, दक्षिण पश्चिम, उत्तर, ऊपर, नीचे जिसमें यह व्यवहार स्थिर हो) आत्मा (जिसमें इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख और ज्ञान हो स्थितहो (वह जीवात्मा) और मन (जिसके द्वारा एक समय में दो पदार्थों को न जानसकें) यह नव द्रव्य हैं ॥२॥

गुणान्विभजते ।

रूप रस गन्ध स्पर्श सङ्ख्या परिमाण पृथक्त्व संयोग विभाग परत्वाऽपरत्व गुरुत्व द्रवत्व स्नेह शब्द बुद्धि सुख दुःखेच्छा द्वेष प्रयत्न धर्माऽधर्म संस्काराश्चतुर्विंशति गुणाः ३

रूप, रस, गन्ध. स्पर्श, सङ्ख्या, परिमाण (२५) पृथक्त्व (२६) संयोग (२७) विभाग (२८) परत्व (२९) अपरत्व (२९) गुरुत्व (३०) द्रवत्व (३१) स्नेह (३२) शब्द (३३) बुद्धि (३४) सुख (५५) दुःख (५६) इच्छा (५७) द्वेष (५८ प्रयत्न (५९) धर्म (६०) अधर्म (६१) और संस्कार (६४) येचौवीस गुण हैं ॥ ३ ॥

कर्माण्याह ।

उत्क्षेपणाऽपक्षेपणाऽऽकुञ्चनप्रसारण गमनानि पञ्चकर्माणि ॥ ४ ॥

उत्क्षेपण [ऊपरको फेंकना] अपक्षेपण (नीचेको हरकत करना) आकुञ्चन (सकोड़ना) प्रसारण (फैलाना) और गमन (आना जाना घूमना आदि) पांच प्रकार के कर्म हैं ॥ ४ ॥

सामान्यमाह ।

परमपरंचेति द्विविधं सामान्यम् ॥ ५ ॥

सामान्य (६६) दो प्रकारका है एक पर और द्वितीय अपर ॥ ५ ॥

विशेषमाह ।

नित्यद्रव्यवृत्तयो विशेषास्त्वनन्ता एव ॥ ६ ॥

नित्य द्रव्य में रहनेवाले जो विशेष (६७) पदार्थ हैं वे अनन्त हैं ॥ ६ ॥

समवायमाह ।

समवास्त्वेक एव ॥ ७ ॥

समवाय (६८) तो एक ही है ॥ ७ ॥

अभाव प्रकार माह ।

अभावश्चतुर्विधः । प्रागभावःप्रध्वंसाभावोऽत्यन्ताभावोऽन्योऽन्याभावश्चेति ॥ ८ ॥

अभाव (अविद्यमानता) चार प्रकारका होता है. प्रागभाव (घट पटादिका उत्पत्ति के पूर्व न होना) प्रध्वंसाभाव (घट पटादिका उत्पन्न होकर नष्ट होजाना) अत्यन्ता भाव (खरगोश के सींग, वन्ध्या का पुत्रादि) अन्योन्या भाव (घोड़ा बैल नहीं होसक्ता तथा बैल घोड़ा नहीं) ॥ ८ ॥

पृथिव्या लक्षणमाह ।

तत्र गन्धवती पृथिवी । सा द्विविधा । नित्याऽनित्याचेति । नित्यापरमाणुरूपा । अनित्या कार्यरूपा । सा पुनस्त्रिविधा । शरीरेन्द्रिय विषय भेदात् । शरीर मस्मदादीनाम् । इन्द्रियं गन्ध ग्राहकं घ्राणं नासाग्रवर्त्ति । विषयोमृत् पाषाणादिः ॥ ९ ॥

तत्र (२) नव द्रव्यों के बीच में गन्धत्व पृथिवी का लक्षण है । वह पृथिवी दो प्रकारकी है नित्य (कारणरूप) और अनित्य (कार्यरूप) भेद से परमाणु (ज़र्रा) रूप नित्य (सदारहने वाली) और कार्यरूप (वर्त्तमान दृश्यरूप) अनित्य (सदा न रहनेवाली) है फिर वह कार्यरूप पृथिवी तीन प्रकारकी है । शरीर, इन्द्रिय और विषय भेदसे । शरीर हम मनुष्यादिकों का । इन्द्रिय (हवास) गन्ध (बू) को ग्रहण करने वाली शक्ति नासिकाके अगले हिस्से में रहै है मृतिका (मिट्टी) पाषाण (पत्थर) आदिक सब पृथिवी का विषय (पृथिवीत्व) है ॥ ९ ॥

जललक्षणमाह ।

शीत स्पर्शवत्य आपः । ताश्च द्विविधा । नित्या आनित्याश्च । नित्याः परिमाणुरूपाः । अनित्याःकार्यरूपाः । पुनस्त्रिविधाः । शरीरेन्द्रिय विषय भेदात् । शरीरं वरुणलोके

इन्द्रियं रसग्राहकं रसनं जिह्वाग्रवर्ति। विषयः सरित् समुद्रादिः ॥ १० ॥

आप (जल) शीत (ठण्डा) स्पर्श (छूना) वाला होती (ता) है। अर्थात् जो छूने में शीतल विदित हो वह अनित्य परमाणु (ज़र्रा)रूप नित्य(हमेश कायम रहनेवाला)और जलहै)। और वह जल दो प्रकारका है,एक नित्य और दूसरा कार्यरूप (प्रत्यक्ष) अनित्य है। फिर वह कार्य रूप जल तीन प्रकारका है। शरीर (जिस्म) इन्द्रिय और विषय भेद करके। जलीय शरीर वरुण (अन्तरिक्ष) लोक में है। रसको ग्रहण करने वाला रसन (जीभ) इन्द्रिय है जोकि जीभ के अग्रभाग में रहै है, और जलका विषय (बोध कराने वाले) सरित् (नदी) तथा समुद्र प्रभृति हैं ॥ १० ॥

तेजसो लक्षणमाह।

उष्णस्पर्शवत्तेजः। तच्चद्विविधम्। नित्यमनित्यं च। नित्यं परमाणु रूपम्। अनित्यं कार्यरूपम्। पुनस्त्रिविधम्। शरीरेन्द्रिय विषय भेदात्। शरीरमादित्य लोके प्रसिद्धम्। इन्द्रियं रूपग्राहकं चक्षुः कृष्णतारा ग्रवर्त्ति। विषयश्चतुर्विधः। भौमदिव्यौदर्याकरजभेदात्। भौमं वन्ह्यादिकम्,अबिन्धनं दिव्यं विद्युदादि, भुक्तान्न परिणाम हेतु रौदर्यम्, आकरजं सुवर्णादि ॥ ११ ॥

जिस वस्तु का उष्ण (गर्म) स्पर्श हो वह तेज कहलाता है। वह तेज दो प्रकार का है। नित्य और अनित्य। परमाणुरूप तेज नित्य है और कार्यरूप अनित्य। पुनः (फिर) वह कार्यरूप तेज तीन प्रकारका है। शरीर, इन्द्रिय और विषय भेद से। कार्यरूप तेज का शरीर (जिस्म) आदित्य लोक (सूर्यमण्डल) में प्रसिद्ध (भूषित) है। तेज का इन्द्रिय रूपको ग्रहण करने वाले चक्षुः नेत्र) हैं जो कि नेत्र के गोलक में काली पुतली है उसके अग्रभाग में रहै है। विषय (किस्म)चार प्रकारका है। भौम, दिव्य, औदर्य और आकरज भेद से। भौमम (पृथिवी सम्बन्धी) अग्नि जिस से हमारा नैत्यिक कार्य चलता है यह भौमतेज है, जलही है इन्धन (काष्ठस्थानापन्न) जिस तेज का उस का नाम दिव्य तेज (अर्थात् विजली है) भोजन करने के पश्चात् जिसके संयोग से अन्न पकै है वह उदर (पेट) स्थ अग्नि है, और आकर (खान) से उत्पन्न होने वाले सुवर्णादिक धातु हैं उन का नाम आकरज (खान से उत्पन्न होने वाला) तेज (अग्नि है ॥ ११ ॥

वायो लक्षणमाह ।

रूपरहितस्पर्शवान् वायुः । स द्विविधः । नित्योनित्यश्च । नित्यः परमाणु रूपः । अनित्यः कार्यरूपः पुनस्त्रिविधः । शरीरेन्द्रिय विषय भेदात् । शरीरं वायुलोके । इन्द्रियं स्पर्श ग्राहकं त्वक् सर्व शरीर वर्त्ति । विषयो वृक्षादि कम्पन हेतुः ॥ १२ ॥

जिसका कोई रूप (शकल) नहीं परन्तु प्रत्येक पदार्थ को अपनी शक्ति से छुवै है ऐसा जो कोई वस्तु है उसका नाम वायु है। वह वायु दो प्रकार का है। नित्य और अनित्य। परमाणुरूप वायु नित्य है और कार्यरूप अनित्य। फिर वह वायु तीन प्रकार का है। शरीर, इन्द्रिय और विषय भेद करके। वायु का शरीर वायुलोक (अनिल मण्डल) में है। जिसके योग से स्पर्श का ज्ञान होवे है वह वायु का इन्द्रिय है और सब शरीर (देह) में रहै है। और वायु का विषय (मुद्दा) वृक्ष(दरख्त)आदि का हिलाना(चलाना है१२

प्राणलक्षणमाह।

शरीरान्तः संचारी वायुः प्राणः। सचैकोऽप्युपाधि भेदात् प्राणापानादि संज्ञां लभते१३

शरीर के भीतर चलने फिरने वाला जो वायु है उसका नाम प्राण है। यद्यपि वह प्राण एकही है तथापि हृदयादि उपाधि भेद से प्राण, अपान, उदान, व्यान, और समान संज्ञा को प्राप्त होवे है॥ १३॥

आकाशलक्षणमाह।

शब्दगुणक माकाशम्। तच्चैकं विभुनित्यं च १४

आकाश शब्द गुण वाला है। वह आकाश एक है विभु (सब शकल वाले पदार्थों से मिला हुआ है) तथा अनित्य (अविनाशी है)॥ १४॥

काललक्षणमाह।

अतीतादिव्यवहार हेतुः कालः। स चैको विभुर्नित्यश्च ॥ १५ ॥

अतीत आदि (भूत, भविष्यत्, वर्तमान) व्यवहार का जो कारण है वह काल है । और वह काल एक है विभु एवं नित्य है ॥ १५ ॥

दिशोलक्षणमाह ।

प्राच्यादि व्यवहारहेतुर्दिक् । साचैका विभ्वी नित्या च ॥ १६ ॥

प्राची आदिक (प्राची, अवाची, प्रतीची, उदीची) व्यवहार का जो हेतु (सवब) है उसका नाम दिशा है । और वह दिशा एक है विभ्वी है एवं नित्य है ॥ १५ ॥

आत्मनो लक्षण माह ।

ज्ञानाधि करणमात्मा । सद्विविधः । जीवात्मा परमात्मा चेति । तत्रेश्वरः सर्वज्ञः परमात्मा एक एव सुख दुःखादि रहितः । जीवात्मा प्रतिशरीरं भिन्नो विभुर्नित्यश्च २७

ज्ञानही जिसका अधिकरण (आश्रय) है वह आत्मा है । वह आत्मा जीवात्मा और परमात्मा भेद से दो प्रकार का है । ईश्वर सर्वज्ञ (सब कुछ जानने वाला) परमात्मा एकही है जो कि सुख दुःख से रहित (भिन्न) है । जीवात्मा प्रत्येक शरीर में अलहदा २ है विभु है एवं नित्य है ॥१७॥

मनसो लक्षणमाह ।

सुख दुखाद्युपलब्धिसाधन मिन्द्रियं मनः ।

तच्च प्रयात्मनियतत्वादनन्तं परमाणु रूपं नित्यं च ॥ १८ ॥

सुख (अनुकूलत्व) और दुःख (प्रतिकूलत्व) की उप-लब्धि (प्राप्ति) का साधन (करण) मन इन्द्रिय है । और वह मन प्रत्येक आत्मा के साथ सम्बन्द्ध होने से अनन्त है । अर्थात् हरएक जीवात्मा के साथ एक मन रहे है । परमाणु रूप है और नित्य है ॥ १८ ॥

रूपलक्षणमाह ।

चक्षुर्मात्र ग्राह्यो गुणोरूपम् । तच्च शुक्ल नील पीत रक्त हरित कपिश चित्र भेदात्सप्त विधम् । पृथिवी जल तेजोवृत्ति । तत्र पृथिव्यां सप्तविधम् । अभास्वरं शुक्लं जले । भास्वरं शुक्लं तेजसि ॥ १९ ॥

चक्षुर्मात्र (नेत्र शक्ति द्वारा) से जिस गुण (धर्म) का ग्रहण कियाजाता है वह रूप कहलाता है । और वह रूप शुक्ल (सफेद) नील (काला) पीत (पीला) रक्त (लाल) हरित (हरा) कपिश (कपासी) और चित्र (अनेक वर्ण) भेद से सात प्रकार का है । वह रूप—पृथिवी, जल और तेज में रहे है । वहां पृथिवी में सात प्रकार का रूप है । जलमें अभास्वर (दीप्ति रहित) शुक्ल रूप रहै है । तेज में भास्वर (चमकीला) शुक्ल रूप रहै है ॥ १९ ॥

रसलक्षणमाह ।

रसना ग्राह्यो गुणोरसः । स च मधुराः

म्ल लवण कटु कषाय तिक्त भेदात् षड्विधः। पृथिवी जलवृत्तिः । पृथिव्यां षड्विधः । जले मधुर एव ॥ २० ॥

रसना (जीभ) द्वारा जो गुण ग्रहण किया जाता है वह रसहै । और वह रसमीठा खट्टा नमकीन कडुआ कसैला और चरपरा भेद करके छः प्रकारका है । रस पृथिवी और जल में रहै है । पृथिवी में छयौ प्रकारका रस रहै है । जल में मधुर ही रस रहै है ॥ २० ॥

गन्धलक्षण माह ।

घ्राणग्राह्यो गुणो गन्धः । स द्विविधः सुरभिरसुरभिश्च । पृथिवी मात्रवृत्तिः ॥ २१ ॥

घ्राण [नासिका] द्वारा जिस गुण का ग्रहण किया जाता है वह गन्ध है । वह गन्ध दो प्रकारका है । एक सुरभि [सुगन्धि] दूसरा असुरभि [दुर्गन्ध] दोनों प्रकार का गन्ध पृथिवी में रहै है ॥ २१ ॥

स्पर्शलक्षण माह ।

त्वगेन्द्रियमात्र ग्राह्यो गुणः स्पर्शः । स च त्रिविधः । शीतोष्णानुष्णा शीत भेदात् । पृथिव्याप्तेजो वृत्तिः । तत्रशीतो जले । उष्ण स्तेजसि । अनुष्णाशीतः पृथिवी वाय्वोः २२

त्वक् [खाल] से जो गुण ग्रहण किया जाता है वह स्पर्श [छूना] है । और वह एक शीत स्पर्श एक उष्ण-

स्पर्श और एक पृथ्वी जल तेज और वायु में रहै है। तत्र [पृथ्वी जलतेज वायु में से] शीत स्पर्श जलमें रहै है, उष्ण स्पर्श तेज में और अनुष्णाशीत पृथिवी तथा वायु में रहै है ॥ २२ ॥

रूपादि चतुष्टयस्य पाक जत्वादि भेदे नादिकरण विचारमाह।

रूपादि चतुष्टयं पृथिव्यां पाकज मनित्यं च। अन्यत्राऽपाकजं नित्य मनित्यं च। नित्य गतं नित्यम्, अनित्यगतमानित्यम् २३

रूपादि जो चतुष्टय [रूप रस गन्ध स्पर्श] है वह पृथिवी में पाकज [तेजके साथ सम्बन्ध होने से रूपान्तर को प्राप्त होना] और अनित्य है। अन्यत्र [जलतेज वायु में] जो रूप रस स्पर्श है वह अपाकज [तेजके सम्पर्क से अनुत्पन्न] नित्य और अनित्य है। नित्य [ईश्वर जीव प्रकृति वस्तुओंके साथ नित्य और अनित्य] जो सदा न रहेने वाले वस्तुओं के साथ अनित्य है ॥ २३ ॥

सङ्ख्या लक्षणमाह।

एकत्वादि व्यहाराऽसाधारणहेतुः संख्या। सा नवद्रव्यवृत्तिः। एकत्वादि परार्ध पर्यन्ता। एकत्वं नित्य मनित्यं च। नित्यगतं नित्यम्, अनित्यगत मनित्यम्। द्वित्वादिकं तु सर्वत्राऽनित्यमेव ॥ २४ ॥

एकत्वादि [एक दो तीन प्रभृति] व्यहार का जो असाधारण [विशेष] हेतु [कारण] है संख्या कहलाती है। वह संख्या नव द्रव्य [२] में रहने वाली है। एक से लेकर परार्ध [संख] तक है। एकत्व संख्या नित्य और अनित्य है। नित्य पदार्थोंके साथ नित्य और अनित्य पदार्थोंके साथ अनित्य है। द्वित्व [दो] आदिक संख्या सर्वत्र [सर्वस्थलों में] अनित्य ही है ॥ २४ ॥

परिमाणलक्षणमाह।

मानव्यवहाराऽसाधारणं कारणं परिमाणम्। नवद्रव्य वृत्ति। तच्चतुर्विधम्। अणु महद्दीर्घं ह्रस्वं चेति ॥२५॥

मान [माप] व्यवहाह का जो असाधारण कारण (हेतु) है वह परिमाण कहलाता है। वह नव [२] में रहै है। और वह अणु [वहुत छोटा] महत् [वहुत वड़ा] दीर्घ [वड़ा] और ह्रस्व [छोटा] इस विधिसे चार प्रकारका है ॥२५॥

पृथक्त्वलक्षणमाह।

पृथग् व्यवहाराऽसाधारणं कारणं पृथक्त्वम्। सर्वद्रव्यवृत्ति २६

पृथक् [भिन्न] व्यवहार का जो असाधारण कारण है वह पृथक्त्व कहलाता है वह सव द्रव्यों [२] में रहै है ॥ २६ ॥

संयोगलक्षणमाह।

संयुक्त व्यवहाराऽसाधारणो हेतुः संयोगः सर्वद्रव्य वृत्तिः ॥ २७ ॥

संयुक्त (मिलेहुये) व्यवहार का जो असाधारण कारण है वह संयोग [मेल] कहलाता है और सब द्रव्यों [२] में रहै है ॥ २७ ॥

विभागलक्षणमाह ।

संयोगनाशको गुणो विभागः। सर्वद्रव्यवृत्तिः२८

संयोग को जो नाश करने वाला गुण है वह विभाग कहलाता है और वह विभाग सब द्रव्यों में रहै है ॥ २८ ॥

परत्वाऽपरत्व लक्षणमाह ।

पराऽपरव्यवहाराऽसाधारणकारणे परत्वाऽपरत्वे । पृथिव्यादि चतुष्टयमनोवृत्तिनी । ते द्विविधे । दिक्कृते कालकृतेचेति । दूरस्थे दिक्कृतं परत्वम्। समीपस्थे दिक्कृतं परत्वम्। ज्येष्ठेकालकृतं परत्वम्, कनिष्ठेकालकृतमपरत्वम्

पर (अगला) और अपर (उरला) व्यहार का जो असाधारण कारण है वह परत्व और अवरत्व कहलाता है । परत्व और अपरत्व ये दोनों गुण पृथिवी जल तेज वायु और मन इन पांच द्रव्यों में रहैं हैं । दिशा और काल करके परत्व और अपरत्व दोप्रकार का है । जो पदार्थ अपने से दूर है उसमें दिक्कृत परत्व है और जो अपने पास है उसमें दिक्कृत अपरत्व है । जो जन अपने से बडा है उसमें कालकृत परत्व है और जो अपने से कनिष्ठ (छोटा) है उसमें काल अपरत्व है ॥ २९ ॥

गुरुत्वलक्षणमाह ।

आद्य पतनाऽसमवायि कारणं गुरुत्वम्। पृथिवी जलमात्र वृत्ति ॥ ३० ॥

आद्य (प्रथम) पतन (गिरना) का जो असमवायि (अनित्य सम्बन्ध) कारण है वह गुरुत्व (भारीपन) कहलाता है यह गुरुत्व पृथिवी और जलमें रहै है ॥ ३० ॥

द्रवत्वलक्षणमाह ।

आद्यस्पन्दनाऽसमवायि कारणं द्रवत्वम्। पृथिव्यप्तेजो वृत्ति। तद् द्विविधम्। सांसिद्धिकं नैमित्तिकं च । सांसिद्धिकं जले । नैमित्तिकं पृथिवी तेजसोः। पृथिव्यां घृतादावग्नि संयोग जन्यं द्रवत्वम्। तेजसि सुवर्णादौ ३१

आद्य (पूर्व) स्पन्दन (ईषच्चलन) का जो असमवायी कारण है वह द्रवत्व [वहनेवाला वस्तु] कहलाता है । द्रवत्व गुण पृथिवी जल और तेज में रहै है । सांसिद्धिक (स्वाभाविक) और नैमित्तक (तेज के संयोग) भेद से द्रवत्व दो प्रकार का है । सांसिद्धिक द्रवत्व जल में रहै है और नैमित्तिक द्रवत्व पृथिवी और तेज में रहै है । घृतादि रूप पृथिवी में नैमित्तिक द्रवत्व रहता है क्योंकि घी तेज के सम्बन्ध से द्रवीभूत होजाता है और सुवर्ण तेज में भी नैमित्तिक द्रवत्व रहता है क्योंकि सुवर्ण भी अग्नि एवं सुहागा आदि के संयोग से द्रवीभूत (पिघल) होजाता है ॥ ३१॥

स्नेहलक्षणमाह ।

चूर्णादि पिण्डीभावहेतुर्गुणः स्नेहः । जल मात्र वृत्तिः ॥ ३२ ॥

चूर्ण (पिसावस्तु) आदिक पदार्थ का इकट्ठा करना जिस का गुण हो वह स्नेह (चीजों को एकत्र करने की शक्ति) कहलाता है । वह स्नेह केवल जल में ही रहै है ॥ ३२ ॥

शब्द लक्षणमाह ।

श्रोत्र ग्राह्योगुणः शब्दः । आकाशमात्र वृत्तिः । सद्विविधः । ध्वन्यात्मकोवर्णात्मकश्चेति ध्वन्यात्मकोभेर्यादौ । वर्णात्मकः संस्कृत भाषादिरूपः ॥ ३३ ॥

श्रोत्र (कर्ण) द्वारा जिस गुण का ग्रहण (महसूस) कियाजाता है वह शब्द है । वह शब्द आकाश में ही रहै है । शब्द ध्वन्यात्मक (ध्वनीरूप) और वर्णात्मक (वर्णरूप) भेद से दो प्रकार का है । भेरी (नक्कारा) आदि बाजों का जो शब्द है वह ध्वनीरूप है और संस्कृत भाषादि रूप शब्द है वह वर्णात्मक है ॥ ३३ ॥

बुद्धिलक्षणमाह ।

सर्व व्यवहारहेतुर्ज्ञानं बुद्धिः । सा द्विविधा । स्मृतिरनुभवश्च । संस्कार मात्र जन्यं ज्ञानं स्मृतिः । तद्भिन्नं ज्ञानमनुभवः । सद्विविधः । यथार्थोऽयथार्थश्चेति । तद्वति तत्प्रकारको-

ऽनुभवो यथार्थः। यथा रजते इदं रजतमिति ज्ञानम्। सैव प्रमेत्युच्यते। तदभाववति तत्-प्रकारकोऽनुभवोऽयथार्थः। यथा शुक्ताविदं रजतमितिज्ञानम्। सैवाऽप्रमेत्युच्यते ॥३४॥

सम्पूर्ण व्यवहारोंका हेतु जो ज्ञान है उसका नाम बुद्धि है। और वह बुद्धि स्मृति (याददास्त) और अनुभव [सब से पूर्वज्ञान] भेद से दो प्रकारकी है। संस्कार मात्र से ही पैदाहुआ जो ज्ञान है वह स्मृति है। और उससे भिन्न[इतर] ज्ञान अनुभवहै,वह अनुभव यथार्थ [ज्योंका त्यों] और अयथार्थ भेदसे दो प्रकारका है। जो वस्तु जैसा हो उसका वैसाही ज्ञान यथार्थ अनूभव कहलाताहै, जैसे रजत [चांदी] में रजत का ही ज्ञान हो,इसी ज्ञानका नाम प्रमा (यथार्थ ज्ञान कहा जाता है। जो पदार्थ जैसा नहीं है लेकिन उसको वैसा मानना अयथार्थ अनुभव कहलाताहै जैसे शुक्ति (सीप) में चांदीका ज्ञान करना इसीका नाम अप्रमा है ॥ ३४ ॥

यथार्थाऽनुभवभेद लक्षणमाह।

यथार्थानुभवश्चतुर्विधः प्रत्यक्षानुमित्युपमितिशाब्दभेदात्। तत्करणमपि चतुर्विधं प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्द भेदात् ॥ ३५ ॥

प्रत्यक्ष (इन्द्रिय जन्य ज्ञान) अनुमिति (हेतु वा तर्क से किसी चीजको जानना) उपमिति (उपमा) और शाब्द भेद से यथार्थ अनुभव चार प्रकार का है प्रत्यक्ष अनुमान उपमान

(बराबरी दिखलाना) और शब्द भेद से यथार्थ अनुभव का करण भी चार प्रकार का है ॥ ३५ ॥

करण लक्षणमाह ।

व्यापारवदसाधारणं कारणं करणम् । अनन्यथासिद्धकार्यनियतपूर्ववृत्ति कारणम । कार्यं प्रागभावप्रतियोगि ॥ ३६ ॥

व्यापार के सदृश जो असाधारण कारण है उसी का नाम करण है । जो कार्य अन्यथा [दूसरी तरह] सिद्धि से रहित नियत पूर्व वृत्ति होता है वह कारण कहलाता है । जो प्रागभाव [प्रथम न होना] का प्रति योगी है वही कार्य है ॥ ३६ ॥

कारणभेद लक्षणमाह ।

कारणं त्रिविधम् । समवाय्यसमवायि निमित्त भेदात् । यत् समवेतं कार्य मुत्पद्यते तत्समवायिकारणम् । यथा–तन्तवःपटस्य पटश्च स्वगतरूपादेः । कार्येण कारणेन वा सहैकास्मिन्नर्थे समवेतत्वे सति कारण मसमवायि कारणम् । यथा-तन्तुसंयोगः पटस्य तन्तुरूपं पटरूपस्य । तदुभयाभिन्नं कारणं निमित्तकारणम् । यथा-तुरीवेमादिकं पटस्य । तदेतत् त्रिविधकारण मध्ये यदसाधारणं कारणं तदेव कारणम् ॥ ३७ ॥

समवायी असमवायी और निमित्त भेदसे कारण (जिसके विना कार्यकी उत्पत्ति नहोसके) तीन प्रकारकाहै। जोकार्य समवेत (मिला हुआ) उत्पन्न होता है वह समवायी (नित्य सम्बन्धवाला) कारण है। जैसे–तन्तु (सूत) पट (कपडा) का और पट स्वस्थित रूप आदि का समवायी कारण है। कार्य अथवा कारणके साथ एक ही अर्थ में वर्त्त-मान होने का जो कारण है वह असमवायि कारण है। जैसे–तन्तु संयोग (मेल) पटका और तन्तु रूप पटरूपका असमवायि कारण है। समवायि कारण और असमवायि कारण से जो भिन्न है वह निमित्त कारण है। जैसे–तुरी (कूंच) और वेम (बुन्ने का डण्डा) आदिक पटके निमित्त कारण हैं। इन तीन प्रकारके कारणों के वीच में जो असाधारण कारण है वही कारण है ॥ ३७ ॥

प्रत्यक्षलक्षणमाह ।

तत्र प्रत्यक्ष ज्ञानकरणं प्रत्यक्षम् । इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष जन्यं ज्ञानं प्रत्यक्षम् । तद् द्विविधम् । निर्विकल्पकं सविकल्पकं चेति । तत्र निष्प्रकारकं ज्ञानं निर्विकल्पकम् । यथेदं किञ्चित् । सप्रकारकं ज्ञानं सविकल्पकम् । यथा-डित्थोऽयं ब्राह्मणोऽयं श्यामोऽयमिति ३८

तत्र प्रत्यक्ष अनुमान उपमान और शब्द चार प्रकार के प्रमाणों में से प्रत्यक्ष प्रमाण का जो कारण है उसी का नाम

प्रत्यक्ष है। इन्द्रिय और अर्थ के सन्निकर्ष [मेल] से पैदा हुआ ज्ञान प्रत्यक्ष कहलाता है। सविकल्प और निर्विकल्प भेद से वह प्रत्यक्ष ज्ञान दो प्रकारका है। इन दोनों में से जो निष्प्रकारक ज्ञान है वह निर्विकल्पक कहलाता है। जैसै यह कुछ है और सप्रकारक (मय भेद) जो ज्ञान है वह सविकल्पक कहलाता है। जैसे—यह डित्थ है यह ब्राह्मण है यह श्याम है इत्यादि ॥ ३८ ॥

सन्निकर्षविभागलक्षणमाह ।

(क) प्रत्यक्षज्ञानहेतुरिन्द्रियार्थ सन्निकर्षः षड्विधः । संयोगः, संयुक्तसमवायः, संयुक्तसमवेतसमवायः, समवायः, समवेतसमवायः, विशेषणविशेष्यभावश्चेति ॥

(क) प्रत्यक्ष ज्ञान का कारण जो इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष प्रथम कहा है वह छै प्रकारका है। प्रथम संयोग द्वितीय संयुक्त समवाय तृतीय संयुक्त समवेत समवाय चतुर्थ समवाय पञ्चम समवेत समवाय और षष्ठ विशेषण विशेष्य भाव है ॥

(ख) चक्षुषा घटप्रत्यक्ष जनने संयोगः सन्निकर्षः । घटरूप प्रत्यक्षजनने संयुक्त समवायः सन्निकर्षः । चक्षुः संयुक्ते घटेरूपस्य समवायात् । रूपत्वसामान्य प्रत्यक्षे संयुक्त समवेत समवायः सन्निकर्षः । चक्षुः संयुक्तेघटेरूपं समवेतं तत्ररूपत्वस्यसमवायात्।

(ख) नेत्र द्वारा घडे के प्रत्यक्ष होने पर जो ज्ञान होता है उसका नाम संयोग सन्निकर्ष है। घडे में रूपका प्रत्यक्ष होने पर जो ज्ञान होताहै उसका नाम संयुक्त समवाय सन्निकर्ष है। क्योंकि नेत्र से घडेके साथ मेल होनेपर रूपका समवाय सम्बन्ध है। रूप के सामान्य प्रत्यक्ष होने पर जो ज्ञान होताहै उसका नाम संयुक्त समवेत समवाय सन्निकर्ष है क्योंकि नेत्रका घडे साथ मेल होने पर रूपका समवायी सम्बन्ध है॥

[ग] श्रोत्रेण शब्द साक्षात्कारे समवायः सन्निकर्षः। कर्णविवर वृत्त्याकाशस्य श्रोत्रत्वाच्छब्दस्याकाश गुणत्वाद् गुणगुणिनोश्च समवायात्। शब्दत्व साक्षात्कारे समवेतसमवायः सन्निकर्षः। श्रोत्रसमवेते शब्दे शब्दत्वस्य समवायात्। अभाव प्रत्यक्षे विशेषण विषेष्यभावः सन्निकर्षः। घटाभाववद् भूतलमित्यत्र चक्षुः संयुक्ते भूतले घटाऽभावस्य विशेषणत्वाद्।

[ग] (क्षोत्र (कान) इन्द्रिय द्वारा शब्दके साक्षात करने में जो ज्ञान होता है उसका नाम समवाय सन्निकर्ष है क्योंकि कारण (कान) के छिद्र में जो आकाश है उसी का नाम श्रोत्र है और शब्द आकाश का गुण

है गुण और गुणी का समवाय सम्बन्ध है। शब्दके साक्षात् (प्रत्यक्ष) करने में जो ज्ञान होता है उसका नाम समवेत समवाय सन्निकर्ष है। क्योंकि शब्द श्रोत्रमें समवेत होता है और शब्द में शब्दत्व समवाय करके रहे है। अभाव के प्रत्यक्ष होने पर जो ज्ञान होताहै उसका नाम विशेषण विशेष्य भाव सन्निकर्ष है। घट के अभाव से युक्त यह भूतल है इस स्थल पर अपने चक्षु से संयुक्त होता है इसमें घड़ेका अभावहै यह विशेषण रहता है॥

[घ] एवं सन्निकर्ष षट्क जन्यं ज्ञानं प्रत्यक्षम। तत्करणमिन्द्रियम्। तस्मादिन्द्रियं प्रत्यक्ष प्रमाण मिति सिद्धम्॥ ३९॥

[घ] इस प्रकार छै सन्निकर्ष (सन्निधि) से पैदा हुआ ज्ञान प्रत्यक्ष कहलाता है। उस प्रत्यक्ष ज्ञानका कारण इन्द्रिय है तिससे इन्द्रिय प्रत्यक्ष प्रमाण है यह सिद्ध हुआ॥ ३९॥

॥ इति प्रत्यक्ष खण्डः॥

अथाऽनुमान खण्डम्।

अनुमानलक्षणमाह।

अनुमिति करणमनुमानम्। परामर्श जन्यं ज्ञानमनुमितिः। व्याप्ति विशिष्टपक्षधर्मता ज्ञानं परामर्शः। यथावह्निव्याप्य धूमवानयं

पर्वत इति ज्ञानं परामर्शः । तज्जन्यं पर्वतो वह्निमानिति ज्ञानमनुमितिः । यत्रयत्र धूमस्तत्रतत्राऽग्निरिति साहचर्यनियमोव्याप्तिः । व्याप्यस्य पर्वतादि वृत्तित्वं पक्षधर्मता ॥ ४० ॥

अनुमिति (हेतु वा तर्क से किसी वस्तु का जानना) का जो करण (साधन) है वह अनुमान (कयास) है । परामर्श (विवेचन) से जायमान जो ज्ञान (मालूमात) है वह अनुमिति है । व्याप्ति विशिष्ट पक्षधर्मता ज्ञान का नाम परामर्श है । जैसे—यह पर्वत (पहाड़) अग्निसे व्याप्य (व्याप्त) धूम (धुआं) वाला है इसी ज्ञान का नाम परामर्श है । पर्वत अग्नि वाला है इस प्रकार के परामर्श से उत्पन्न हुआ ज्ञान अनुमिति कहलाता है । जहां जहां धूम होता है वहां वहां अग्नि होता है यह साहचर्य (समानाधिकरण्य) नियम है इसी का नाम व्याप्ति है और व्याप्य का पर्वतादि में रहना ही पक्षधर्मता कहलाती है ॥ ४० ॥

अनुमानविभागमाह ।

[क] अनुमानं द्विविधम् । स्वार्थं परार्थं च । स्वार्थं स्वानुमिति हेतुः । तथाहि स्वयमेवभूयो भूयो दर्शनेन यत्रयत्र धूमस्तत्रतत्राऽग्निरिति महानसादौ व्याप्तिंगृहीत्वा पर्वत समीपं गत्वा तद्गते चाऽग्नौ सन्दिहानः पर्वते धूमंपश्यन् व्याप्तिंस्मरति यत्रयत्र धूमस्तत्रतत्राऽग्निरिति ॥

[क] अनुमान दो प्रकार का होता है एक स्वार्थ (अपने लिये) और दूसरा परार्थ (दूसरे के लिये)। अपनी अनुमिति का जो हेतु है उसका नाम स्वार्थाऽनुमान है। जैसे कि अपने आप वार २ देखता है कि जहां धूम होता है वहां अग्नि रहता है इस प्रकार भोजन भवन प्रभृति स्थानों में व्याप्ति (साहचर्य नियम) ग्रहण करके पर्वतके पास जाकर और उसमें जो अग्नि है उसमें सन्देह कर पर्वत में धुयें को देखता हुआ व्याप्ति को याद करता है कि जहां २ धूम होता है वहां २ अग्नि अवश्य रहता है॥

[ख] तदनन्तर वह्नि व्याप्यधूमवानयं पर्वत इति ज्ञानमुत्पद्यते। अयमेवलिङ्ग परामर्श इत्युच्यते तस्मात्पर्वतोवह्निमानिति ज्ञानमनुमितिरुत्पद्यते। तदेतत्स्वार्थानुमानम्॥

[ख] व्याप्ति के स्मरण के पश्चात् अग्नि से व्याप्य धूमवाला यह पर्वत है ऐसा ज्ञान पैदा होता है इसी ज्ञान का नाम लिङ्ग परामर्श कहा जाता है एतदर्थ लिङ्ग ज्ञान से पर्वत अग्नि वाला है ऐसा अनुमिति रूप ज्ञान पैदाहोता है। इस प्रकार के ज्ञान का नाम स्वार्थानुमान है॥

[ग] यत्तुस्वयं धूमादग्निमनुमाय परं प्रतिबोधयितुं पञ्चाऽवयव वाक्यं प्रयुङ्क्ते तत्परार्थानुमानम्। यथा-पर्वतोवह्निमान् धूमवत्त्वाद् योयो धूमवान् स स वह्निवान् यथा

महानसः, तथाचायम्,तस्मात्तथेति। अनेनप्राति पादिताल्लिङ्गात् परोऽप्यग्निं प्रतिपद्यते ॥ ४१ ॥

[ग] जोकि अपने आप धूमसे अग्नि का अनुमान करके दूसरे को जताने के लिये पञ्चावयव (प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण,उपनय,निगमन) वाक्यका प्रयोग करता है उसका परार्थ अनुमान है जैसे–पर्वत अग्निवाला है–धूमवाला होने से, जो २ धूमवाला होता है वह २ अग्निवाला होता है,जैसे कि भोजन भवन—तैसे ही यह पर्वत धूम वाला है, तिससे यह पर्वत अग्नि वाला है। इस प्रकार प्रतिपादित (कथित) लिङ्ग (चिह्न) से छिपा हुआ भी अग्नि मालूम होजाता है ४१

पञ्चाऽवयवानाह ।

प्रतिज्ञा हेतूदाहरणोपनयनिगमनानि पञ्चाऽवयवाः । पर्वतो वह्निमानिति प्रतिज्ञा। धूमवत्त्वादिति हेतुः । योयो धूमवान्ससोऽग्नि वा नित्युदाहरणम् । तथाचाऽयमित्युपनयः । तस्मात् तथेति निगमनम् ॥ ४२ ॥

प्रतिज्ञा (दावा) हेतु (सबब (उदा हरण (मिसाल) उपनय और निगमन (एकी करण) ये पांच अवयव हैं। जैसे—पर्वत अग्निवाला है यह प्रतिज्ञा है, धूमवाला होने से यह हेतु है, जो २ धूमवाला होता है वह २ अग्निवाला होता है यह उदाहरण है, वैसाही यह पर्वत अग्निवाला है इसका नाम निगमन है ॥ ४२ ॥

अनुमानलक्षणोपसंहारमाह ।

स्वार्थानुमिति परार्थानुमित्योर्लिङ्ग परामर्शएव करणम् । तस्माल्लिङ्ग परामर्शोऽनुमानम्

स्वार्थ अनुमिति और परार्थ अनुमिति इन दोनों का लिङ्ग परामर्श ही करण है । तिससे यह विदित होता है कि लिङ्ग का परामर्श ही अनुमान है ॥ ४३ ॥

लिङ्गविभागमाह ।

[क] लिङ्गं त्रिविधम् । अन्वय❀व्यतिरेकि केवलान्वयि केवल व्यतिरेकि चेति । अन्वयेन व्यतिरेकेण च व्याप्ति मदन्वयव्यतिरेकि । यथावह्नौ साध्ये धूमवत्त्वम् । यत्र धूमस्तत्राऽग्निर्यथा महानस इत्यन्वयव्याप्तिः। यत्रवह्निर्नाऽस्ति तत्रधूमोऽपिनाऽस्ति यथा-महाह्रद इति व्यतिरेकव्याप्तिः ॥

(क) लिङ्ग (हेतु) तीन प्रकारका होता है । अन्वयव्यतिरेकी (साध्यको सिद्ध करने वाला हेतु विशेष) केवलान्वयी और केवल व्यतिरेकी । अन्वय (सम्बन्ध) और व्यतिरेक (अभाव) से जिसकी व्याप्ति (साहचर्य नियम) सम्भव हो वह अन्वय व्यतिरेकी लिङ्ग है ।

❀ आर्षन्याय में—पूर्ववत्, शेषवत्, सामान्य तो दृष्ट व्यवहृत हैं—

जैसे—वह्नि (अग्नि) के साध्य (साबित करने लायक) होने में धूमवत्त्व (धुआंपन) हेतु है। जहां धूमहोता है वहां अग्नि अवश्य होताहै जैसे महानस (पाकस्थान) में इसीका नाम अन्वय व्याप्ति है और जहां अग्नि नहीं होता वहां धूम भी नहीं होता जैसे-बडे तालाव में इसीका नाम व्यतिरेक व्याप्ति है ॥

[ख] अन्वयमात्रव्याप्तिकं केवलान्वयि। यथा—घटोऽभिधेयः प्रमेयत्वात् पटवत्। अत्रप्रमेयत्वाऽभिधेयत्वयोर्व्यतिरेकव्याप्तिर्नास्ति सर्वस्य प्रेमयत्वादाभिधेयत्वाच्च ॥

(ख) जिस हेतु की अन्वय मात्र व्याप्ति हो उसका नाम केवलान्वयी है-जैसे—घट (घड़ा) अभिधेय (कथन योग्य) है प्रमेय (सम्यग् जानने योग्य) होनेसे पटवत् वस्त्र के सदृश। इस स्थल पर प्रमेयत्व और अभिधेयत्व में व्यतिरेक व्याप्ति नहीं है क्योंकि सर्व पदार्थ प्रमेयत्व और अभिधेयत्व को प्राप्त होते हैं ॥

[ग] व्यतिरेकमात्रव्याप्तिकं केवल व्यतिरेकि। यथा—पृथिवीतरेभ्योभिद्यते गन्धवत्वात्। यदीतरेभ्यो न विद्यते न तद्गन्धवत् यथा—जलम्। न चेयं तथा। तस्मान्न तथेति। अत्रयद् गन्धवत् तादिराभिन्नमित्यन्वयदृष्टान्तोनाऽस्तिपृथिवीमात्रस्यपक्षत्वात् ८४

(ग) जिस हेतुकी व्यतिरेक मात्र व्याप्ति हो उसका नाम केवल व्यतिरेकी है–जैसे पृथिवी (ज़मीन) इतर (दूसरे) द्रव्यों से भिन्नहै गन्धवती होनेसे। जो इतर (जल तेज वायु आकाश काल, दिशा, आत्मा) द्रव्यों से भिन्न नहीं वह गन्ध वाला नहीं-जैसे—जल वैसे पृथिवी नहीं अर्थात् जलमें गन्ध नहीं परन्तु पृथिवी में है तिससे पृथिवी जलके सदृश गुण वाली नहीं है। इस उदाहरण में जो गन्ध वाला है वह इतर पदार्थों से भिन्नहै इस वास्ते अन्वय व्याप्ति के मध्य में इसका दृष्टान्त नहीं मिलता–क्योंकि यहां पर पृथिवी मात्र को ही पक्ष माना है॥ ४४॥

पक्षसपक्षविपक्षलक्षणमाह।

सन्दिग्ध साध्यवान् पक्षः। यथा-धूमवत्वेहेतौ पर्वतः। निश्चित साध्यवान् सपक्षः। यथा-तत्रैव महानसम्। निश्चितसाध्याभाववान् विपक्षः। यथा-तथैवमहाहृदः॥ ४५॥

सान्दिग्ध (शकवाला) साध्यवाला पक्ष कहा जाता है जैसे-धूमत्व हेतु में पर्वत। निश्चित (सन्देह रहित) साध्यवाला सपक्ष कहलाताहै। जैसे–अनुमान में पाकस्थान। निश्चित साध्यके अभाव वाला विपक्ष है। जैसे–अनुमान में अगाध जलाशय॥ ४५॥

हेत्वाभासविभागमाह।

(क) सव्यभिचारविरुद्ध सत्प्रतिपक्षाऽसिद्धबाधिताःपञ्चहेत्वाभासाः।सव्यभिचारोऽ-

नैकान्तिकः। सत्रिविधः। साधारणाऽसाधारणा-नुपसंहारिभेदात् । साध्याऽभाववद् वृत्तिः साधारणोऽनैकान्तिकः। यथा-पर्वतोवह्निमान् प्रमेयत्वादिति । प्रमेयत्वस्य वह्न्यभाववति ह्रदे विद्यमानत्वाद् ॥

(क) सव्यभिचार विरुद्ध सत्प्रतिपक्ष, असिद्ध और बाधित ये पांच हेत्वाभास (असल में हेतु न हो लेकिन हेतु सा मालूम हो) कहलाते हैं। अनैकान्तिकका नाम सव्यभिचार हेत्वाभास है,और वह सव्यभिचार साधारण असाधारण और अनुपसंहारी भेदसे तीन प्रकारकाहै इन तीनों में जहां साध्यका अभाव रहे वहां पर रहने वाला जो हेतु है उसका नाम अनैकान्तिक साधारण है जैसे—प्रमेयत्व से पर्वत अग्नि वाला है, विना अग्नि वाले तालाब में प्रमेय के विद्यमान होने से एतदर्थ यह साधारणाऽनैकान्तिक है ॥

(ख) सर्वसपक्षाविपक्षव्यावृत्तोऽसाधा-रणः । यथा-शब्दोनित्यः शब्दत्वादिति । शब्दत्वं सर्वेभ्योनित्येभ्योऽनित्येभ्यश्च व्या-वृत्तं शब्दमात्रवृत्ति ॥

(ख) जो हेतु सम्पूर्ण सपक्ष और विपक्ष से भिन्न हो उसका नाम असाधारण है । जैसे—शब्दत्व (शब्दपन) होने से शब्द नित्य है क्योंकि शब्दत्व नित्य (अकाशादि)

और अनित्य (घट पटादि) से भिन्न है शब्दमात्र में ही रहने से, इसका नाम असाधारण है ॥

(ग) अन्वयव्यतिरेक दृष्टान्त रहितो-नुपसंहारी । यथा-सर्वमनित्यं प्रमेयत्वादिति। अत्र सर्वस्याऽपि पक्षत्वाद् दृष्टान्तो नास्ति ॥

(ग) जिसका अन्वय व्याप्ति और व्यतिरेक व्याप्ति में दृष्टान्त न बनसके वह अनुपसंहारी हेतु है । जैसे—प्रमेयत्व होने से यह सम्पूर्ण जगत् अनित्य है—यहां पर सब जगत् के अनित्य होने के पक्ष से दृष्टान्त नहीं बनता एतदर्थ यह अनुप संहारी है ।

(घ) साध्याऽभावव्याप्तो हेतुर्विरुद्धः । यथा-शब्दोनित्यः कृतकत्वादिति । कृतकत्वं हिनित्यत्वाऽभावेनाऽनितत्वेनव्याप्तम् ॥

(घ) साध्य के अभाव करके जो हेतु व्याप्त है उसका नाम विरुद्ध है । जैसे—कृतकत्व (बनावटी) होने से शब्द नित्य है, कृतकत्व ही नित्यत्व के अभाव से अनित्यत्व करके व्याप्त है (अर्थात् जहां २ कृतकत्व है वहां २ अनित्यत्व है) एतदर्थ यह विरुद्ध हेत्वाभास है ।

(ङ) यस्य साध्याऽभावसधकं हेत्वन्तरं विद्यते स सत्प्रति पक्षः । यथा-शब्दोनित्यः श्रावणत्वाच्छब्दत्ववदिति । शब्दोऽनित्यः कार्यत्वाद् घटवदिति ॥

(ङ) जिस हेतु के साध्य (साधन करने के योग्य) के अभाव का सिद्ध करनेवाला द्वितीय हेतु विद्यमान हो वह सत्प्रति पक्ष कहलाता है। जैसे—श्रावणत्व (श्रवणेन्द्रिय ग्राह्य) से शब्दत्व की नाईं शब्द नित्य है—घड़े के सदृश उत्पन्न होनेसे शब्द अनित्य है। अर्थात् अनुमान में श्रावणत्व हेतु का साध्य नित्य है इस नित्य का जो अभाव अनित्य है इसका सिद्ध करनेवाला द्वितीय अनुमान में कार्यत्व हेतु विद्यमान है एतदर्थ श्रावणत्व हेतु सत्प्रति पक्ष है ॥

(च) असिद्धस्त्रिविधः । आश्रयासिद्धः स्वरूपासिद्धो व्याप्यत्वासिद्धश्चेति । आश्रयासिद्धो यथा-गगनारविन्दं सुरभ्यरविन्दत्वात् सरोजारविन्दवत् । अत्र गगनारविन्दमाश्रयः । स च नास्त्येव ॥

(च) असिद्ध तीन प्रकार का है। आश्रयाऽसिद्ध स्वरूपाऽसिद्ध और व्याप्यत्वाऽसिद्ध भेद से। आश्रयाऽसिद्ध का उदाहरण यह है कि जिस प्रकार गगनारविन्द (आकाश का कमल) सुरभि (सुगन्धि) वाला है कमल के होने से तालाब के कमल के सदृश। इस स्थल पर गगनारविन्द यह आश्रय है इसमें सुरभित्व रहता है ऐसा सिद्ध करना है परन्तु यह आश्रय जड़ मूल से ही प्रसिद्ध नहीं कारण कि कमल तो प्रसिद्ध है परन्तु आकाश में उत्पत्ति नहीं होती एतदर्थ गगनारविन्द यह आश्रय ही नहीं—अतएव यह आश्रयाऽसिद्ध हेत्वाभास है।

(छ) स्वरूपाऽसिद्धो यथा शब्दो गुणश्चाक्षुषत्वात् । अत्र चाक्षुषत्वं शब्देनाऽस्ति शब्दस्य श्रवणत्वात् ॥

(छ) जो हेतु स्वरूप (अपने रूप) से ही असिद्ध हो उसका नाम स्वरूपाऽसिद्ध है जैसे—चाक्षुष (नेत्र विषयक) होने से शब्द गुण है यहां पर शब्द में चाक्षुषत्व (लोचन विषयता) नहीं है क्योंकि शब्द का ग्रहण श्रोत्र इन्द्रिय से होता है नेत्र से नहीं एतदर्थ यह हेतु स्वरूपासिद्ध है ।

(ज) सोपाधिको हेतुर्व्याप्यात्वाऽसिद्धः। साध्यव्यापकत्वे सतिसाधनाऽव्यापकत्वमुपाधिः । साध्य समानाधिकरणाऽत्यन्ताऽभावाऽप्रतियोगित्वं साध्यव्यापकत्वम् । साधनवन्निष्ठाऽत्यन्ताऽभावाऽप्रतियोगित्वं साधनाव्यापकत्वम् । पर्वतोधूमवान् वह्निमत्त्वादिति । अत्राऽऽर्द्रेन्धन संयोग उपाधिः । तथाहि-यत्र धूमस्तत्राऽऽर्द्रेन्धन संयोग इतिसाध्यव्यापकता। यत्रवह्निस्तत्रार्द्रेन्धन संयोगोनास्ति । अयोगोलक आर्द्रेन्धनसंयोगाऽभावादिति साधनव्यापकता । एवं साध्यव्यापकत्वेसति साधनाव्यापकत्वार्द्रेन्धनसंयोग उपाधिः। सोपाधिकत्वाद् वह्निमत्त्वं व्याप्यत्वाऽसिद्धम् ॥

(ज) जो हेतु उपाधि (हेतु और साध्य की भिन्नता) सहित रहता है वह व्याप्यत्वाऽसिद्ध कहलाता है। साध्य की व्यापकता होने पर जो साधन की व्यापकता (सर्वत्र स्थिति) होती है उसका नाम उपाधि है । साध्य के समानाधिकरण के अत्यन्ता भाव का जो अप्रति योगित्व है इसी का नाम साध्य व्यापकत्व है । सावनवत् (हेतु के सदृश) की निष्ठा (निष्पत्ति) का जो अत्यन्ताभाव उसका जो प्रतियोगित्व है वह साधनाऽव्यापकत्व कहलाता है । पर्वत धूमवाला है अग्निवाला होने से यह यहां आर्द्रेन्धन (गीला काष्ठ) संयोग उपाधि है । जैसे कि जहां धूम होता है यहां पर आर्द्रेन्ध संयोग अवश्य होता है इसका नाम साध्य व्यापकता है । जहां अग्नि होता है वहां पर आर्द्रेन्धन का संयोग नहीं होता जैसे लोहे के गोले में आर्द्रेन्ध के संयोग का अभाव है एतदर्थ इसका नाम साधनाऽव्यापकता है इस प्रकार साध्य के व्यापकत्व होनेपर साधना (करण) की अव्यापकता से आर्द्रेन्ध का संयोग उपाधि होता है सोपाधिकत्व (मय उपाधि के) होने से वह्निमत्त्व (आगपन) हेतु व्याप्यत्वाऽसिद्ध कहलाता है।

(झ) यस्य साध्याऽभावः प्रमाणान्तरेण निश्चितः सवाधितः। यथा-वह्निरनुष्णो द्रव्यत्वादिति । अत्राऽनुष्णत्वं साध्यं तद्भावउष्णत्वं स्पर्शन प्रत्यक्षेण गृह्यते इति वाधितत्वम् ४६

इत्यनुमानखण्डः ।

(झ) जिस हेतु के साध्यका अभाव प्रमाणान्तर (प्रत्यक्ष प्रमाण) से निश्चित (सिद्धान्त) किया जावे वह

वाधित कहलाता है । जैसे—द्रव्यत्व होने से वह अग्नि अनुष्ण (जो गर्म नहो) है । यहां पर अनुष्णत्व साध्य है—उसके अभाव में उष्णत्व स्पर्शन (छूना) प्रत्यक्ष से ही ग्रहण किया जाता है एतदर्थ यह वाधित हेतु कहलाता है ४६

यहां पर अनुमान खण्ड समाप्त होता है ॥

अथोपमानखण्डः ॥

उपमानलक्षणमाह ।

उपमिति करणंमुपमानम् । संज्ञासंज्ञिसम्बन्ध ज्ञानमुपमितिः । तत्करणमुपमानम् । अतिदेशवाक्यार्थस्मरणमवान्तरव्यापारः। तथाहि—गवयशब्दवाच्यमजानन् कुताश्चिदारण्यकपुरुषाद् गोसदृशोगवयइतिश्रुत्वा वनं गतो वाक्यार्थं स्मरन्गोसदृशं पिण्डंपश्यति तदनन्तरमसौगवय शब्द वाच्य इत्युपमितिरूत्पद्यते ॥ ४७ ॥

इत्युपमान खण्डं समाप्तम् ॥

उपमिति (सादृश्य ज्ञान) का जो करण (साधन) है वह उपमान (जिस से समानता दिखलाई जावे) कहलाताहै संज्ञा (नाम) और संज्ञी (नाम वाला) का सम्वन्ध [मेल] उपामिति है । उपामिति का करण उपमान है । अति देश

[अन्यधर्म को दूसरे में लगाकर दिखा देना] के वाक्य के अर्थ का जो स्मरण है वह अवान्तर [दरमियानी] व्यापार कहलाता है । जैसे कि—कोई नागरिक पुरुष गवय [नील गाव] शब्दवाच्य गवय व्यक्ति को न जानता हुआ कहीं जंगली आदमी से गायकी नांई नीलगाव होता है ऐसा सुन वन में गया हुआ वाक्य [फिकरा] के अर्थ [मतलव] को याद करता हुआ गायकी शकल में किसी पिण्ड [शरीर] को देखता है स्मरण के पश्चात् वह व्यक्ति गवय पद की वाच्य [कहने वाली] है ऐसी उपमिति उस पुरुष को उत्पन्न होती है इस प्रकारके ज्ञान का नाम उपमान है ४७

यहां पर उपमान खण्ड समाप्त है ॥

अथशब्दखण्डः ।

शब्दप्रमाणमाह ।

आप्त वाक्यं शब्दः । आप्तस्तु यथार्थ वक्ता । वाक्यं पद समूहः । यथा—गामानयेति । शक्तं पदम् । अस्मात्पदादयमर्थो बोद्धव्यइतीश्वर संकेतः शक्तिः ॥ ४८ ॥

आप्त (यथार्थवक्ता) का कथन शब्द प्रमाण कहलाता है सत्यवादी को आप्त कहैहैं । पदों के समूह (समुदाय) का नाम वाक्य है । जैसे—गायकोला । शक्त (समर्थ) पद कहलाता है । इसपद से यह अर्थ जानना चाहिये ऐसा जो परमात्मा का सङ्केत है वह शक्ति कहलाती है ॥ ४८ ॥

वाक्यार्थज्ञानहेतुमाह ।

आकाङ्क्षा योग्यता सन्निधिश्च वाक्यार्थ ज्ञानहेतुः। पदस्य पदान्तर व्यतिरेक प्रयुक्ता-न्वयाऽननुभावकत्वमाकाङ्क्षा । अर्थावाधोयो-ग्यता । पदाना मविलम्बेनोच्चारणं सन्निधिः४९

आकाङ्क्षा (सम्बन्ध) योग्यता (सामर्थ्य) और सान्निधि (सामीप्य) ये तीनों वाक्यके अर्थ ज्ञानमें हेतु होतेहैं । एक पदका पदान्तर में व्यतिरेक (विशेष) प्रयोग कियेहुये अन्वय (सम्बन्ध) का अनुभव (तजुरवा) न होना आकाङ्क्षा कहलातीहै । अर्थके अवाव (रुकावट का नहोना) का नाम योग्यता है । पदों का अविलम्ब (शीघ्र) से उच्चारण का नाम सन्निधि है ॥ ४९ ॥

अप्रमाणमाह ।

आकाङ्क्षादि रहितं वाक्यमप्रमाणम् । यथा-गौरश्वः पुरुषो हस्तीति न प्रमाणम, आ-काङ्क्षा विरहात् । अग्निनासिञ्चेदिति न प्रमाणं योग्यता विरहात् । प्रहरे प्रहरेऽसहोच्चारितानि गामानयेत्यादि पदानि न प्रमाणं सान्निध्या भावात् ॥ ५० ॥

आकाङ्क्षा योग्यता और सन्निधि से रहित (भिन्न) वाक्यों की प्रमाणता नहीं है । जैसे—गाय घोडा आदमी हाथी ये वाक्य प्रमाण कोटि में नहीं है क्योंकि उक्त पदों की

परस्पर आकाङ्क्षा नहीं है। अग्नि (आग) से सिञ्चनकर (छिड़क) यह वाक्य भी प्रमाणित नहीं क्योंकि इसमें सींचने की योग्यता नहीं। एक २ प्रहर के पश्चात् गा, मा, न, य, [गायको ला] ऐसे पद भी प्रमाणी भूत नहीं होते क्योंकि इनमें सन्निधि का अभाव है ॥ ५० ॥

वाक्यविभागमाह ।

वाक्यं द्विविधम् । वैदिकं लौकिकं च । वैदिकमीश्वरोक्तत्वात्सर्वमेव प्रमाणम् । लौकिकंत्वाप्तोक्तं प्रमाणम् । अन्यदप्रमाणम् ५१

वाक्य दो प्रकार के होते हैं एक वैदिक (वेदके) दूसरे लौकिक (लोकके) वैदिक वाक्य ईश्वरोक्त होने से सर्व प्रमाणित हैं और लौकिक वाक्य आप्तोक्त प्रमाणी भूत हैं—शेष वाक्य (मिथ्या भाषियों के) अप्रमाणित हैं ॥

शाब्दज्ञानमाह ।

वाक्यार्थज्ञानं शाब्दज्ञानम्। तत्करणंशब्दः ५२

वाक्य के अर्थ का ज्ञान ही शब्द का ज्ञान है और उस शब्द ज्ञान का जो कारण है उसका नाम शब्द है ५२

अयथार्थाऽनुभवविभागमाह ।

अयर्थाथानुभवस्त्रिविधः । संशयविपर्यय तर्कभेदात् । एकास्मिन् धर्म्मिणि विरुद्ध नाना धर्मवैशिष्ट्यावगाहिज्ञानं संशयः। यथा-स्थाणुर्वा पुरुषोवेति । मिथ्याज्ञानं विपर्ययः। यथा-

शुक्ताविदं रजतमिति । व्याप्यारोपेण व्यापकारोपस्तर्कः। यथा-यदि वह्निर्नस्यात्तर्हिधूमोऽपि न स्यादिति ॥ ५३ ॥

संशय (शक) विपर्यय (उलटा) और तर्क (दलील) भेद से अयथार्थ (विरुद्ध) अनुभव तीन प्रकारका है। एक धर्म वाले पदार्थ में विरुद्ध नाना प्रकारके विशेष अवलोडन कराने वाला जो ज्ञान है वह संशय कहलाता है। जैसे यह स्थाणु (ठूंट) है या पुरुष (आदमी)। मिथ्या ज्ञान विपर्यय ज्ञान कहलाता है। जैसे शुक्ति (सीप) में रजत (चांदी) का ज्ञान । व्याप्य (फैला हुआ) के आरोप (कल्पना) से जहांपर व्यापक (सर्वत्र स्थित) का भी आरोप होवे इस का नाम तर्क है। जैसे—यदि अग्नि न हो तो यह धूम भी न होवे ॥ ९३ ॥

स्मृतिविभागमाह ।

स्मृतिरपिद्विविधा। यथार्थाऽयथार्था च। प्रमाजन्या यथार्था अप्रमाजन्याऽयथार्था॥५४॥

यथार्थ और अयथार्थ भेद से स्मृति भी दो प्रकारकी है। जो प्रमा (निश्चय ज्ञान) से स्मृति उत्पन्न होती है वह यथार्थ है (ठीक) और जो अप्रमा से उत्पन्न होती है वह अयथार्थ है ॥ ९४ ॥

सर्वेषामनुकूलवेदनीयं सुखम् ॥ ५५ ॥

सब प्राणियों को जो अपने अनुकूल (मुआफिक) ज्ञान है वह सुख कहलाता है ॥ ९९ ॥

प्रतिकूलवेदनीयं दुःखम् ॥ ५६ ॥

सम्पूर्ण जीवों को जो अपने प्रतिकूल (बरखिलाफ) वेदनीय (जानने के योग्य) है वह दुःख कहलाता है ५६

इच्छा कामः॥ ५७ ॥

इच्छा (ख्वाहिश) का नाम कामना है ॥ ५७ ॥

क्रोधो द्वेषः॥ ५८ ॥

क्रोध (गुस्सा) का नाम द्वेष (विरोध) है ॥५८॥

कृतिः प्रयत्नः ॥ ५९ ॥

कृति का नाम प्रयत्न है ॥ ५९ ॥

विहित कर्मजन्यो धर्मः ॥ ६० ॥

विहित (वेदोक्त) कर्मोंसे जो जन्य उत्पन्न फल है वह धर्म कहलाता है ॥ ६० ॥

निषिद्ध कर्मजन्यस्त्वधर्मः ॥ ६१ ॥

जो निषिद्ध (वर्जित) कर्मों से उत्पन्न हो वह अधर्म कहलाता है ॥ ६१ ॥

बुद्ध्यादयोऽष्टावात्ममात्र विशेष गुणाः ६२

बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म और अधर्म ये आठ आत्मा के विशेष गुण हैं ॥ ६२ ॥

बुद्धीच्छाप्रयत्ना द्विविधाः । नित्या अनित्याश्च। नित्या ईश्वरस्य अनित्या जीवस्य ६३

बुद्धि इच्छा और प्रयत्न नित्यता और अनित्यता भेद से दो प्रकार के हैं। नित्य तो ईश्वर के और अनित्य जीव के ॥

संस्कारविभागमाह ।

संस्कारस्त्रिविधः। वेगो भावना स्थितिस्थापकश्चेति। वेगः पृथिव्यादिचतुष्टयमनोवृत्तिः। अनुभवजन्या स्मृतिहेतुर्भावनात्ममात्रवृत्तिः। अन्यथाकृतस्य पुनस्तदवस्थापादकः स्थिति स्थापकः। कटादि पृथिवीवृत्तिः ६४

वेग, भावना और स्थितिस्थापक भेद से संस्कार तीन प्रकार का है। वेग पृथिवी जल तेज वायु और मन में रहैहै। जो अनुभव से उत्पन्न और स्मृति का कारण हो वह भावना कहलाती है, यह भावना आत्मा में ही रहै है। अन्यथा (दूसरी तरह) किये हुये वस्तु की फिर पूर्ववद् अवस्था (हालत) होजाने का जो हेतु वह स्थितिस्थापक कहलाता है। उक्त धर्म कट [चटाई] आदि पार्थिव द्रव्यों में रहै है॥

चलनात्मकं कर्म। ऊर्ध्वदेशसंयोगहेतुरुत्क्षेपणम्। अधोदेशसंयोगहेतुरपक्षेपणम्। शरीर सन्निकृष्टसंयोगहेतुराकुञ्चनम्। बिप्रकृष्टसंयोग हेतुः प्रसारणम्। अन्यत्सर्वंगमनम् ६५

चलन रूप क्रिया का नाम कर्म है। ऊपरकी तरफ संयोग [मेल] का जो हेतु वह उत्क्षेपण [ऊपरको फेंकना] कहलाता है। नीचे की तरफ संयोग का जो हेतु वह अपक्षेपण [नीचे फेंकना] कहलाता है। शरीर [देह] के सन्निकृष्ट [निकटता] के संयोग का जो हेतु वह आकुञ्चन [सिको-

ड़ना] कहलाता है । विप्रकृष्ट [दूरस्थ] के संयोग का जो हेतु वह प्रसारण [फैलाना] कहलाता है । और इनके अतिरिक्त कर्म गमन कहलाते हैं ॥ ६५ ॥

सामान्यलक्षणमाह ।

नित्यमेकमनेकानुगतं सामान्यम् । द्रव्य-गुणकर्मवृत्ति । तद्द्विविधम् । पराऽपरभेदात् । परंसत्ता । अपरं जातिर्द्रव्यत्वादि ६६

जो नित्य [सदा रहने वाला] एक और अनेकानुगत [समवाय सम्बन्धस्थ] पदार्थ होता है वह सामान्य कहलाता है । वह सामान्य द्रव्य गुण और कर्म में रहै है । पर और अपर भेदसे वह सामान्य दो प्रकारका है । पर सामान्य का नाम सत्ता [विद्यमानता] और द्रव्यत्वादि [पृथिव्यादि] अपर सामान्य का नाम जाति है ॥ ६६ ॥

विशेषनिरूपणम् ।

नित्यद्रव्यवृत्तयो व्यावर्त्तका विशेषाः ६७

जिस के योगसे नित्य द्रव्यों में परस्पर भेद उत्पन्न हो वह विशेष कहलाता है ॥ ६७ ॥

समवायनिरूपणम् ।

नित्यसम्बन्धः समवायः। अयुतसिद्धवृत्तिः ययोर्द्वयोर्मध्य एकमपराश्रितमेवावतिष्ठते, ता-

वयुसिद्धौ । यथा—अवयवाऽवयविनौ, गुण गुणिनौ, क्रिया क्रियावन्तौ, जातिव्यक्ती, विशेषनित्यद्रव्येचेोति ६८

नित्य सम्बन्ध को समवाय कहते हैं वह अयुत [मिश्रत, अमिश्रत] सिद्ध [निष्पन्न] में रहता है । जिन दोनों में एक दूसरे के आश्रय करके रहता है वे दोनों अयुत सिद्ध कहलाते हैं । जैसे—अवयव [अङ्ग] और अवयवी का [अङ्गी] गुण और गुणी का क्रिया और क्रिया वाले का जाति और व्यक्ति का विशेष और नित्य द्रव्यों का भी परस्पर सम्बन्ध है ॥ ६८ ॥

अभावनिरूपणमाह ।

अनादिः सान्तः प्रागभाव उत्पत्तेः पूर्वं कार्यस्य । सादिरनन्तः प्रध्वंस उत्पत्त्यनन्तरं कार्यस्य । त्रैकालिकसंसर्गावच्छिन्नप्रतियोगिताकोऽत्यन्ताभावः। यथा—भूतले घटो नास्ति। तादात्म्यसम्बंधावच्छिन्नप्रतियोगिताकोऽन्योन्याभावः । यथा—घटः पटो न भवतीति ६९

अनादि (जिसका शुरू नहो) उत्पत्ति के पूर्व कार्य होना और सान्त (नाशवान) प्रागभाव कहलाता है। कार्य की उत्पत्ति के पश्चात् सादि (नाशवात्) और अनन्त

(इयत्ता रहित) प्रध्वंसाभाव कहलाता है त्रैकालिक (भूत) भविष्यत्, वर्तमान) का संसर्ग (मेल) अवछिन्न (विशिष्ट) की प्रतियोगिता (प्रतिकूलता) अत्यन्ताभाव कहलाती है। जैसे ज़मीन पर घड़ा नहीं है। जिसका प्रतियोगी तादात्म्य (भेद रहित) सम्बन्ध से अवछिन्न होता है वह अन्योन्य भाव कहलाता है। जैसे—घड़ा कपड़ा नहीं होता ॥ ६९ ।

सर्वेषा मेव पदार्थानां यथायथमुक्तेष्वेवा-न्तर्भावात् सप्तैव पदार्था इति सिद्धम् ॥७०॥

समाप्तोऽयं ग्रन्थः ।

सब पदार्थों की सातही पदार्थों के अन्तर्गत गणना हो जाने से सात ही पदार्थ है यह सिद्ध हुआ ॥ ७० ॥

कणादन्यायमतयोर्बालव्युत्पत्तिसिद्धये ।
अन्नंभट्टेन विदुषा रचितस्तर्कसंग्रहः ॥ १ ॥

कणाद और गौतम के मतका आश्रय लेकर बालकों के बोध की सिद्धि के लिये विद्वान् अन्नभट्टने यह तर्क सङ्ग्रह रचा है ॥ १ ॥